बाइबल टीचर

वर्ष 19 जनवरी 2022 अंक 2

सम्पादकीय

यीशु के विषय में ग़लत जानकारी

यीशु प्रचार करता हुआ फिलिप्पी के देश में आया और "चेलो से पूछा कि लोग मनुष्य के पुत्र को क्या कहते हैं, उन्होंने कहा, कितने तो यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला कहते हैं और कितने एलिय्याह और कितने यिर्मयाह या भविष्यद्वक्ताओं में से कोई एक कहते है। उस ने उनसे कहा, परन्तु तुम मुझे क्या कहते हो? शमौन पतरस ने उत्तर दिया, कि तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है।" (मत्ती 16:13-16)। मित्रों मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि प्रभु यीशु परमेश्वर का पुत्र है। परमेश्वर ने अपने पुत्र को इस संसार में इसलिये भेजा ताकि वह जगत के पापों के लिये अपने प्राणों को क्रूस पर बलिदान करे। (यूहन्ना 3:16)। अधिकतर लोग यीशु के इस पृथ्वी पर जन्म लेने के उद्देश्य को नहीं समझते। लोगों की धारणा है कि यीशु बीमारों को चंगा करने तथा भूखों को खाना खिलाने आया था। यीशु के आने का विशेष उद्देश्य भौतिक नहीं परन्तु आत्मिक बातों को महत्व देना था। और वह किसी विशेष जाति के लिये नहीं आया था। वह सबके लिये आया था।

यीशु ने कहा था, "मार्ग, सच्चाई और जीवन मैं ही हूं, बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता।" (यूहन्ना 14:6)। वह जगत की ज्योति है, अच्छा चरवाह है। एक महान वैद्य है। राजाओं का राजा है, तथा जगत का उद्धारकर्त्त है। (यशायह 9:6-7)।

जब वह इस पृथ्वी पर था, तब वह लोगों को परमेश्वर के राज्य के विषय में बताता था। वह लोगों को सिखाता था और लोग उसकी शिक्षा से चकित हो जाते थे। फ़रीसी भी उसकी शिक्षाओं से चकित हो जाते थे। वे यह भी चाहते थे कि उसकी कोई गलती पकड़े। उसके ऊपर वे कई प्रकार के दोष लगाते थे। परन्तु एक विशेष बात जो यीशु में हम देखते हैं कि उसके सिखाने का अंदाज अलग था।

आज सबसे बड़ी दुख की बात यह है कि यीशु के विषय में, कई लोगों के मनों में गलत धारणाएं है और वह उसकी बातों को समझ नहीं पाते थे। जब यीशु क्रूस पर लटका हुआ चिल्ला रहा था, "हे मेरे परमेश्वर तूने मुझे क्यों छोड़ दिया?"

तब कई लोग यह सोच रहे थे कि वो ऐल्लियाह को पुकार रहा है। लोग उसकी हंसी उड़ाकर कहते थे कि यह अपने आपको परमेश्वर का पुत्र कहता है और अपने को बचा नहीं सकता। उसकी बातों को वे गलत तरीके से समझते थे। कई लोग यह सोचते थे कि वह इस पृथ्वी पर अपना राज्य बनाने आया है। जबकि यीशु ने कहा था कि मेरा राज्य इस जगत का नहीं है। (यूहन्ना 18:36)। यीशु अपना अत्मिक राज्य बनाने आया था। उसका यह राज्य उसकी कलीसिया है। (कुलु. 1:13)।

यीशु आज लोगों को निमंत्रण देकर कहता है, ''हे सब परिश्रम करने वालों और बोझ से दबे लोगों मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा।'' (मत्ती 11:28) कई लोग यीशु की इस बात को भी गलत समझते थे। उनकी सोच यह थी कि यीशु हमारी बीमारी को ठीक कर देगा, हमें मुश्किल से भरी जिंदगी से छुटकारा दे देगा। जबकि यीशु ने हमेशा आत्मा के उपर महत्व दिया। हमारी आत्मा का उद्धार होना महत्वपूर्ण है। क्योंकि यीशु ने कहा था यदि मनुष्य सारे जगत को प्राप्त करे और अपनी आत्मा की हानि उठाये तो उसे क्या लाभ होगा? (मत्ती 16:26)। यीशु यह बताने का प्रयत्न कर रहा था कि मनुष्य को कितनी भी शानओ-शोकत धन-दौलत मिल जाये और वह अपनी आत्मा को नरक के योग्य बना दे तो उसे क्या लाभ होगा?

यीशु के आश्चर्यक्रमों को लोग समझ नहीं पाते थे। यीशु जिस प्रकार के अद्धभुत कार्य करता था, आज कोई मनुष्य ऐसे कार्य नहीं कर सकता। दावा तो बहुत लोग करते है परन्तु करते नहीं है। मृतकों को जीवित करना और पांच रोटी दो मछलीयों से पांच हजार लोगों को खाना खिलाना। हमें जानना चाहिए कि आश्चर्यक्रमों को करने का उद्देश्य यह था कि लोग विश्वास करें कि वह परमेश्वर का पुत्र है। प्रेरितों तीन अध्याय में पतरस और यूहन्ना ने एक जन्म से लंगड़े को उसी क्षण चंगा कर दिया था। उन्होंने किसी प्रकार का धक्का नहीं दिया, शोर नहीं मचाया और न ही कोई तमाशा किया जैसा कि कई प्रचारक आज करते हैं। आज कई लोग पवित्र आत्मा के बपतिस्मे के विषय में भी अनुचित धारणा रखते हैं। हम जानते हैं कि प्रेरितों ने पवित्र आत्मा का बपतिस्मा लिया था। यह बपतिस्मा एक आज्ञा नहीं बल्कि प्रतिज्ञा थी तथा कुरनेलियुस ने पवित्र आत्मा का बपतिस्मा इसलिये लिया था ताकि यहूदी समाज से जो आये थे वे जाने कि जैसे परमेश्वर को यहूदी स्वीकार्य हैं वैसे ही गैर-यहूदी भी स्वीकार्य है अर्थात परमेश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता।

अधिकांश लोग बाइबल की बातों को इसलिये नहीं समझ पाते क्योंकि वह बाइबल का अध्ययन नहीं करते। यीशु के दोबारा आने के विषय में लोगों के मनों में बहुत सी गलतफहमियां है। पिछले वर्षो में कई लोगों ने भविष्यवाणियां की थी कि वह इस वर्ष में या इस तारीख पर आयेगा और वे सब झूठे ठहरे। बाइबल बताती है कि वह चोर की नाई अचानक आयेगा जब लोग खा-पी रहे होंगे। (2 पतरस 3:8-10)।

बाइबल हमें बताती है कि हमें धोखे में नहीं आना है। पौलुस ने कहा था, ''धोखा न खाओ।'' (गलतियों 6:7)। यदि आप यीशु और उसके विषय में गलतफ़हिमियों से बचना चाहते हैं तो अपनी बाइबल का अध्ययन कीजिये, झूठे प्रचारकों के धोखे में न आये। पौलुस ने कहा था, ''जो लोग उस शिक्षा के विपरीत जो तुमने पाई है, फूट पड़ने और ठोकर खाने के कारण होते हैं, उन्हें ताड़ लिया करो, क्योंकि ऐसे लोग सीधे-सादे मन के लोगों को बहका देते हैं (रोमियों 16:17)।

मैं सुसमाचार से नहीं लजाता

सनी डेविड

जब हम परमेश्वर पर विचार करते हैं, तो हमारा ध्यान इस बात पर जाता है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। परमेश्वर की विशाल शक्ति को हम प्रतिदिन अपनी आंखों से देखते हैं और उसे महसूस भी करते हैं। जब हम आकाश में चमकते सूरज और चांद सितारों को देखते हैं तो हमें परमेश्वर की याद आ जाती है। परमेश्वर की पुस्तक बाइबल में लिखा है, कि आकाश परमेश्वर की महिमा और उसकी हस्तकला का वर्णन कर रहा है। हवा में उड़ते हुए पक्षी, पृथ्वी पर चलते हुए पशु, और जल में तैरते हुए भांति-भांति के जन्तु हमें हमारे महान सृष्टिकर्ता की याद दिलाते हैं, और फिर, हम जब स्वयं अपने ऊपर ध्यान करते हैं, और अपने शरीर के बाहरी और अंदरूनी अंगों के बारे में सोचते हैं, तो हम परमेश्वर की महान शक्ति की कल्पना तक करने के योग्य नहीं ठहरते। क्योंकि सब कुछ जो परमेश्वर ने बनाया है, वह बड़ा ही अद्‌भुत और मनुष्य की समझ के परे है।

अक्सर देखा जाता है, कि मनुष्य परमेश्वर को अपनी कल्पनाओं में बैठाना चाहता है। मनुष्य उस सर्वशक्तिमान की आकृतियां और तस्वीरें बनाता है; उसे मूर्तियों में ढालकर भांति-भांति के रूप में देता है। पर मनुष्य किन वस्तुओं की कल्पना कर सकता है? मनुष्य केवल उन्हीं वस्तुओं की कल्पना कर सकता है जिन्हें वह देख सकता है। पर क्या कभी किसी इंसान ने आत्मा को देखा है? परमेश्वर तो परमात्मा है। उसे कभी किसी मनुष्य ने देखा है। हम उसकी सामर्थ से परिचित हैं, जिसे हम अपने चारों तरफ देखते हैं। हम उसके गुणों से परिचित हैं, क्योंकि बाइबल, परमेश्वर के वचन की पुस्तक हमें परमेश्वर के बारे में बताती है। लेकिन परमेश्वर को कोई काल्पनिक रूप देकर उसकी कोई सूरत या मूरत या उसका कोई रूप नहीं बना सकता। और जब कोई इंसान यदि ऐसा करता है, तो वह उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की तौहीन और उसका अनादर करता है जिसने सारे जगत की सब वस्तुओं को बनाया है।

न केवल परमेश्वर ने संसार को बनाया ही है, पर वह उसका संचालन भी करता है। आरंभ में जैसे कि, उसने आकाश में चमकने वाले सूरज, चांद और सितारों को बनाया था, वे सभी उसी तरह से आज भी कायम हैं, और ठीक वैसे ही आज भी काम कर रहे हैं। पृथ्वी अपना चक्कर अपने निर्धारित समय से लगा लेती है। और जिस प्रकार से उसने आरंभ में पेड़-पौधों को, फल-फूलों को साग-पात को आरंभ में बनाया था, वैसे ही वे आज भी उसी की सामर्थ से पैदा हो रहे हैं। और मनुष्य भी, जिन नियमों को परमेश्वर ने आरंभ में स्थापित किया था, उन्हीं नियमों के अनुसार, उसी की सामर्थ से, संसार में प्रत्येक वस्तु आज भी जन्म लेती है। जब एक बालक का जन्म होता है तो हस्पताल और डॉक्टर नर्स और दवाईयों की सहायता ली जाती है। पर वास्तव में, उस बालक के जन्म के पीछे किस की सामर्थ है? वह सामर्थ, परमेश्वर की सामर्थ है। ऐसे ही, फसलें उगाई जाती है और फसलें काटी जाती है। पर उनको जीवन और जन्म कौन

देता है? यह ठीक है, कि मनुष्य को परिश्रम करना पड़ता है। जोतना और बोना पड़ता है; खाद और पानी डालना पड़ता है। पर जीवन किसकी शक्ति से मिलता है? जीवन केवल परमेश्वर से ही मिलता है। और जिंदगी केवल जिंदगी से ही मिल सकती है, यानि किसी भी मरी हुई वस्तु से जीवन नहीं निकलता। और क्योंकि, परमेश्वर ही सबको जीवन देता है, इसलिये जिस परमेश्वर की बात हम कर रहे हैं वह एक जिंदा परमेश्वर है।

जिस प्रकार से जीवन और मृत्यु मनुष्य के वश में नहीं है, उसी तरह से पाप से छुटकारा या उद्धार यानि मुक्ति पाना भी मनुष्य के वश में नहीं है। आज पृथ्वी पर सभी जगह अनेकों लोग तरह-तरह के कामों को करके अपने पापों से मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ लोग अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये अपने शरीरों को काट-पीट रहे हैं और दुख दे रहे हैं। तो कुछ अपने आप को भूख और प्यास से पीड़ित कर रहे हैं। लोग चढ़ावे चढ़ाते हैं; दान-पुन्य के काम करते हैं, और अपनी-अपनी समझ से देवी-देवताओं का पूजा-पाठ करते हैं। अर्थात लोग अपनी ही समझ-बूझ से और अपनी ही युक्तियों से अपने पापों से छुटकारा पाना चाहते हैं, ताकि वे इस जीवन के बाद स्वर्ग के अनन्त जीवन में प्रवेश पा लें। पर क्या यह संभव है?

पाप की मजदूरी, बाइबल में लिखा है, मृत्यु है। (रोमियों 3:23, 6:23)। और क्योंकि मृत्यु का अर्थ है अलग होना- जैसे कि आत्मा का शरीर से अलग हो जाना मृत्यु कहलाता है- सो पाप की मजदूरी से जो मृत्यु पैदा होती है उसका परिणाम होता है परमेश्वर से अलग हो जाना। पाप क्या है? पाप का अर्थ है परमेश्वर की इच्छा पर न चलना। न केवल परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया है, पर उसने सभी मनुष्यों के लिये अपनी इच्छा को भी प्रकट किया है। और यह मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह परमेश्वर की इच्छा ढूंढ़े, उसे जाने और उस पर चले। और यदि मनुष्य ऐसा नहीं करता है, तो न केवल वह अपने पापों में ही रहता है, पर उसी परिस्थिति में, अपने पापों में ही रहकर, वह इस संसार से सदा के लिये चला भी जाता है। यह एक बड़ी ही भयानक और कड़वी सच्चाई है, जिस का हम इंकार नहीं कर सकते। और इस सच्चाई का सामना हम में से हर एक को करना पड़ेगा।

और इसी के साथ एक और सच्चाई यह भी है, कि केवल परमेश्वर ही मनुष्य का पाप से उद्धार कर सकता है। जिस प्रकार से आरंभ में अपनी अद्भुत सामर्थ से परमेश्वर ने मनुष्य को जीवन दिया था। उसी तरह से, अपनी अद्भुत सामर्थ से परमेश्वर ने मनुष्य को आत्मिक जीवन भी प्रदान किया है। और यहां आत्मिक जीवन से हमारा अभिप्राय पाप से मुक्ति पाना, अर्थात उद्धार पाने से है। परमेश्वर की इच्छा की पुस्तक पवित्र बाइबल में लिखा है, कि परमेश्वर ने जगत के सब लोगों को ऐसा प्रेम किया है कि उसने जगत के लिये, सबके पापों का प्राश्चित करने के लिये, अपने एकलौते पुत्र को बलिदान कर दिया था, ताकि उस पर विश्वास लाकर और उसकी आज्ञाओं को मानकर, उसके द्वारा सारा जगत उद्धार पाए। (यूहन्ना 3:16, 36; 1 यूहन्ना 4:10)। यह काम परमेश्वर ने कैसे किया था?

उसने अपने सामर्थी वचन को एक मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर भेज दिया था। उसने अर्थात उसके वचन ने मनुष्य के रूप में आकर सामर्थ के बड़े-बड़े अद्भुत काम किये थे। और बड़ी ही महत्वपूर्ण शिक्षाएं दी थी और फिर परमेश्वर ने होने दिया था

कि कुछ प्रभावशाली लोग उसके शत्रु बन जाएं। और यहां तक उसके विरोधी बन जाएं, कि उस स्थान उसे और उस समय की प्रथा के अनुसार उसे एक क्रूस पर लटकाकर एक अपराधी के समान मृत्यु दण्ड दें। वह मृत्यु दण्ड वास्तव में परमेश्वर ने ही अपनी इच्छा से अपने पुत्र को दिलवाया था। ताकि वह संसार के सब मनुष्यों के पापों के बदले में मारा जाए और सारे जगत के लोग उसमें होकर उसके द्वारा अपने-अपने पापों से उद्धार पा लें। बाइबल में लिखा है, कि उसीको, जिसमें कोई पाप नहीं था, परमेश्वर ने हमारे लिये पापी ठहराया, ताकि उस में होकर हम परमेश्वर के लेखे में धर्मी बन जाएं।

और यह तब होता है, बाइबल में लिखा है, जब मनुष्य यीशु में विश्वास लाता है, और अपने हर एक बुरे काम से अपना मन फिराता है, और इस प्रकार पाप के लिये मरके एक मनुष्य की समानता पर बपतिस्मा लेने के द्वारा पानी के भीतर गाड़ा जाता है; और उसमें से बाहर निकलकर परमेश्वर की इच्छा पर चलकर एक नए जीवन की सी चाल चलता है।

है न परमेश्वर की सामर्थ अद्‌भुत? जो काम मनुष्य से नहीं हो सकता है, उसी को परमेश्वर अपनी सामर्थ से मनुष्य के लिये संभव कर देता है। और मनुष्य का कर्त्तवय यह है कि वह परमेश्वर की इच्छा को स्वीकार करके उसे माने। क्या आप ऐसा करेंगे?

आरंभ के मसीही लोगों की उपासना

जे. सी. चोट

यह बात ध्यान देने योग्य है कि लोग किस प्रकार, कहा और कब उपासना करते हैं और वे उपासना में क्या करते हैं, इत्यादि। हम सभी इस बात को जानते हैं कि आज बहुतेरी कलीसियाएं हैं और उन में से अधिकांश अपनी विधियों से उपासना करती है। यह विभिन्नता क्यों हैं? क्या ऐसा होना चाहिए? किस प्रकार हम यह जान सकते हैं कि हम प्रभु की उपासना उसी तरह से कर रहे हैं जैसे कि वह चाहता है? इस बात को जानने के लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम बाइबल में से इस बात को देखें कि आरंभ के मसीही लोग किस प्रकार उपासना किया करते थे?

पिन्तेकुस्त के दिन जब कलीसिया की स्थापना हो गई थी, तो इस प्रकार लिखा है, "और वे प्रेरितों से शिक्षा पाने, और संगति रखने में और रोटी तोड़ने में और प्रार्थना करने में लौलीन रहे।" (प्रेरितों 2:42)। ये चेले या मसीही प्रेरितों से शिक्षा पाने में या उनकी शिक्षा में लौलीन रहे। सो उन्होंने क्या किया? यद्यपि यहां उपासना के प्रत्येक नियम का उल्लेख नहीं हुआ है, तौभी तीन बातों का स्पष्ट वर्णन है अर्थात वे संगति रखने या देने में, रोटी तोड़ने या प्रभु-भोज लेने में, और प्रार्थना करने में लौलिन रहे।

बाद में हम पढ़ते हैं, कि पौलुस अपनी एक यात्रा के दौरान जब त्रोआस से होकर गुजरा तो वहां के मसीही लोगों के साथ उपासना करने की मनसा से वह वहीं रूक गया। इस संबंध में हम इस प्रकार पढ़ते हैं "सप्ताह के पहिले दिन जब हम रोटी तोड़ने के लिये इक्ट्ठे हुए, तो पौलुस ने जो दूसरे दिन चले जाने पर था, उन से बातें की, और

आधी रात तक बातें करता रहा।" (प्रेरितों 20:7)। यहां हमारा ध्यान इस बात पर जाता है कि उपासना करने का दिन सप्ताह का पहला दिन था। प्रत्यक्ष ही है कि पौलुस वहां सोमवार के दिन पहुंचा था, परन्तु उन लोगों के साथ उपासना करने की मनसा से वह वहां सप्ताह भर रूका रहा, यहां तक की शनिवार का दिन भी उसने वहीं पर बिता दिया, ताकि सप्ताह का पहला दिन आए और वह प्रभु के ठहराए हुए दिन में उसके लोगों के साथ मिलकर उसकी उपासना करे। फिर हम यह भी देखते हैं कि यह वह दिन था जिस में चेले यानि मसीही रोटी तोड़ने अर्थात प्रभु-भोज में भाग लेने के लिये इक्ट्ठे होते थे। और फिर हम देखते हैं, कि पौलुस ने इस अवसर को उपयोग में लाकर उनसे बातें की अर्थात उन्हें वचन सुनाया, और फिर वह अपने मार्ग को चला गया।

1 कुरिन्थियों की पत्नी के 10 तथा 11 अध्यायों में पौलुस ने कुरिन्थुस में मसीही भाईयों को प्रभु-भोज के महत्व के विषय में लिखा था। उसने कहा, "क्योंकि यह बात मुझे प्रभु से पहुंची, और मैंने तुम्हें भी पहुंचा दी; कि प्रभु यीशु ने जिस रात वह पकड़वाया गया रोटी ली। और धन्यवाद करके उसे तोड़ी और कहा; कि यह मेरी देह है, जो तुम्हारे लिये है; मेरे स्मरण के लिये यही किया करो। इसी रीति से उसने बियारी के पीछे कटोरा भी लिया, और कहा; यह कटोरा मेरे लोहू में नई वाचा है, जब कभी पीओ, तो मेरे स्मरण के लिये यही किया करो। क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते, और इस कटोरे में से पीते हो, तो प्रभु की मृत्यु को जब तक वह न आए, प्रचार करते हो। इसलिये जो कोई अनुचित रीति से प्रभु की रोटी खाए या उसके कटोरे से पीए वह प्रभु की देह और लोहु का अपराधी ठहरेगा। इसलिये मनुष्य अपने आप को जांच ले और इसी रीति से इस रोटी में से खाए, और इस कटोरे में से पीए। क्योंकि जो खाते-पीते समय प्रभु की देह को न पहिचाने, वह इस खाने और पीने से अपने ऊपर दण्ड लाता है। इसी कारण तुम में बहुतेरे निर्बल और रोगी है, और बहुत से सो भी गए।" (1 कुरिन्थियों 11:23-30)। अब यहां कुछ विशेष बातों के ऊपर ध्यान दें-

1. पौलुस के पास यह बात प्रभु से पहुंची थी।

2. रोटी के विषय में वह कहता है कि यह प्रभु की देह की प्रतीक है, और कटोरे के विषय में, कि यह प्रभु के लोहू का प्रतीक है।

3. प्रभु की देह तथा लोहू को स्मरण करने के लिये हमें उस में भाग लेना चाहिए।

4. इस में भाग लेकर वे प्रभु की मृत्यु को, जब तक वह न आए प्रचार करते हैं।

5. जो अनुचित रीति से उसमें से खाते और पीते हैं, अर्थात प्रभु के प्रति विश्वासी न रहकर, तो वे उसके खाने और पीने से अपने ऊपर दण्ड लाते हैं।

6. उसमें भाग लेने से पहिले वे अपने आप को जांचें यह देखने के लिये कि उनकी आत्मिक स्थिति क्या है। इस में विचार यह था, कि यदि उनके जीवनों में कोई पाप था जिसके कारण वे प्रभुभोज में भाग लेने को तैयार न थे, तो पहले वे परमेश्वर के साथ संधी कर लें अर्थात अपने जीवन को उसके सम्मुख सही कर लें, और तब प्रभु-भोज में भाग लें। यहां इस बात को कह देना उचित होगा कि यद्यपि उस मनुष्य को प्रभु-भोज में भाग नहीं लेना चाहिए जो प्रभु के योग्य जीवन व्यतीत नहीं कर रहा है और न ही वह प्रभु के योग्य जीवन व्यतीत कर सकता है यदि वह प्रभु-भोज में भाग नहीं लेता है। इसलिये, यदि किसी के जीवन में कोई ऐसी बात है जो नहीं होनी चाहिए, तो उसे पहिले जीवन से निकाल देना चाहिए, केवल तभी तक विश्वासी मसीही की नाई प्रभु-भोज में भाग लिया जा सकता है।

7. प्रभु भोज में भाग लेते समय प्रभु के लोगों को इस सहभागिता को केवल कुछ लोगों तक ही सीमित नहीं कर देना चाहिए, क्योंकि पौलुस के कथानुसार उसमें भाग लेने से पहिले प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं अपने आप को जांचे। परमेश्वर मनुष्य के मन को देखता है, परन्तु मनुष्य, कलीसिया के सदस्य, अन्य मनुष्यों के मनों को नहीं जांच सकते। इस कारण हमें किसी मनुष्य को जांचने का कोई अधिकार नहीं है, परन्तु यह प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं अपने आपको बाइबल में लिखी बातों के द्वारा जांचे।

फिर, 1 कुरिन्थियों 11 अध्याय में पौलुस कुरिन्थुस में लोगों को इस बात के लिये भी दोषी ठहराता है कि उन्होंने प्रभु-भोज को एक साधारण भोज में बदल कर उसका ठट्ठा किया था। वह उनसे कहता है, कि खाने-पीने के लिये उन के घर हैं, किन्तु जब वे उपासना के लिये इक्ट्ठे होते हैं तो खाने-पीने और पेट भरने के लिये एकत्रित न हों। यह बात आज भी उसी तरह सच है। मसीही लोगों को उपासना करने के लिये पूरी गंभीरता के साथ एकत्रित होना चाहिए। उन्हें रोटी और प्याले में से केवल मसीह की देह तथा लोहू को स्मरण करने के लिये भाग लेना चाहिए।

फिर जब हम 1 कुरिन्थियों 16:1, 2 को पढ़ते हैं तो हम देखते हैं कि वही लेखक हमें देने के विषय में यहां बताता है। यहां वह लिखकर यूं कहता है, "अब उस चंदे के विषय में जो पवित्र लोगों के लिये किया जाता है, जैसी आज्ञा मैं ने गलतिया के लोगों को दी, वैसा ही तुम भी करो। सप्ताह के पहिले दिन में से हर एक अपनी आमदनी के अनुसार कुछ अपने पास रख छोड़ा करे। कि मेरे आने पर चंदा न करना पड़े।" फिर लिखकर वह कहता है, "परन्तु बात तो यह है, कि जो थोड़ा बोता है वह थोड़ा काटेगा भी; और जो बहुत बोता है वह बहुत काटेगा। हर एक जान जैसा मन में ठाने वैसा ही दान करे; न कुढ़-कुढ़ के और न दबाव से, क्योंकि परमेश्वर हर्ष से देने वाले से प्रेम रखता है।" (2 कुरिन्थियों 9:6, 7)। सो इन बातों के अनुसार हम देखते हैं कि प्रभु चाहता है कि उसके लोग चंदा या दान दें। यहां से हम निम्नलिखित बातों को सीखते हैं:

1. यह कार्य उन्हें सप्ताह के पहिले दिन करना था।
2. सारे मसीहीयों को देना था।
3. उनको उसी में से देना था जो उनके पास था।
4. उन्हें अपनी आमदनी के अनुसार देना था। नए नियम में कहीं पर भी दशमांश देने की शिक्षा नहीं दी गई है और न ही कहीं विशेष रूप से यह दर्शाया गया है कि कितना धन एक व्यक्ति को देना चाहिए।
5. उन्हें उस तरह से देना है जैसा उन्होंने देने से पहिले अपने मनों में ठाना था या निश्चय किया था।
6. उन्हें कुढ़-कुढ़ के दबाव से नहीं देना था, यह समझकर नहीं देना था कि उन्हें जबरदस्ती देने को कहा जा रहा है।
7. बल्कि उन्हें हर्ष के साथ देना था क्योंकि परमेश्वर खुशी से देने वालों से प्रेम रखता है अर्थात उनसे जो देना चाहते हैं और देकर प्रसन्न होते हैं।

गाने के संबंध में भी नए नियम में बहुत कुछ कहा गया है, और एक जगह पौलुस और सीलास के बारे में हम पढ़ते हैं कि जब वे बन्दिगृह में थे तो यहां वे परमेश्वर के भजन गा रहे थे। (प्रेरितों 16:25)। परन्तु ऐसे किसी उदाहरण का कहीं

कोई उल्लेख नहीं है जहां प्रभु के लोगों की मण्डली सप्ताह के पहिले दिन गाने के लिये एकत्रित हुई हो। किन्तु फिर भी, पवित्रात्मा से परिपूर्ण लेखक ने मसीही लोगों को गीत गाने की आज्ञा दी थी (इफिसियों 5:19; कुलुस्सियों 3:16), सो इस प्रकार उपासना का यह एक और नियम था जिसे पहिली शताब्दी में मसीही लोग मानते थे।

अब इन तमाम बातों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि उस समय प्रभु के लोग प्रत्येक सप्ताह के पहिले दिन (रविवार को) प्रार्थना करने के लिये, वचन का अध्ययन करने के लिये, गाने के लिये तथा प्रभु भोज में भाग लेने और चंदा देने के लिये एकत्रित होते थे। इसके अतिरिक्त और कुछ हम नहीं पढ़ते। उस समय के विभिन्न ऐतिहासिक लेखों के द्वारा भी हमे ठीक यही जानकारी मिलती है। सो इस प्रकार हम आज जानते हैं कि प्रभु की उपासना में उस समय वे लोग क्या-क्या किया करते थे। सो क्या हमें भी आज वैसे ही नहीं करना चाहिए?

घर में कृपा (गलातियों 5:22, 23)

कोय रोपर

बात करने में दयालु

घर में हमें बात करने में दयालु होना आवश्यक है। हमें दूसरों के साथ दूसरों के बारे में दयालुता से बात करनी चाहिए, यानी परिवार के लोगों से अपनी बात कहने या कहने के ढंग में चौकस होना चाहिए। घर में हमें वह आजादी मिल सकती है जो कहीं और नहीं मिल सकती पर हमें इतने भी आजाद नहीं समझना चाहिए कि हम जो चाहे कह सकते हैं और जैसे चाहे कह सकते हैं। कुछ बातें कहने के ढंग से ही मामले बिगड़ जाते हैं। गलत बात को गलत ढंग से कहना पति और पत्नी के बीच संबंध को सदा के लिए बिगाड़ सकता है।

इसके अलावा परिवार के लोगों को अपनी बातों की भी चौकसी करनी चाहिए क्योंकि कुछ बातें न ही बोली जाएं तो अच्छा है। उदाहरण के लिए पति या पत्नी किसी को भी विवाह से पहले के अपने किसी संबंध की बात करने की आवश्यकता नहीं है। सवाल यह नहीं है कि यह पाप गुप्त न रख पाने पर मुझे अच्छा लगेगा? बल्कि यह है कि, क्या यह बताने से सहायता मिलेगी? ऐसा अंगीकार संबंध को मजबूत साथी को प्रोत्साहित या विवाह की सहायता नहीं करेगा।

परन्तु संभवतया हम जो चाहे वह कहने को आजाद नहीं लग सकते क्योंकि बाइबल हमें बात कहने और कहने के ढंग के प्रति चौकस करती है:

याकूब 3:6-जीभ एक आग है। (उसका तात्पर्य है कि मसीही लोगों को जीभ को काबू करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।)

मत्ती 12:36, 37-और मैं तुमसे कहता हूं कि जो भी निकम्मी बातें मनुष्य कहेंगे, न्याय के दिन एक बात का लेखा देंगे। क्योंकि तू अपनी बातों के कारण निर्दोष और अपनी बातों ही के कारण दोषी ठहराया जाएगा।

कुलुस्सियों 4:6-तुम्हारा वचन सदा अनुग्रह सहित और सलोना हो, कि तुम्हें हर मनुष्य को उचित रीति से उत्तर देना आ जाए।

इफिसियों 4:29–कोई गंदी बात तुम्हारे मुंह से न निकले, पर आवश्यकता के अनुसार वही जो उन्नति के लिए उत्तम हो, ताकि उससे सुनने वालों पर अनुग्रह हो।

नीतिवचन 15:1– कोमल उत्तर सुनने से जलजलाहट ठण्डी होती है, परन्तु कटुवचन से क्रोध धधक उठता है।

हम घर में दयालुता से कैसे बोलेंगे?

हम शिष्टाचार से भरे शब्दों में बात करते हैं। घर में कृपा और धन्यवाद और क्षमा करना जैसे शब्दों का इस्तेमाल सिखाया जाना चाहिए।

हम प्रशंसा की बातें बोल सकते हैं। हम सब अपने आप ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं पिछली बार कब मैंने अपनी पत्नी की तारीफ करते हुए कब कहा था कि वह सुन्दर लग रही है या वह कितना अच्छा खाना बनाती है? अंतिम बार मैंने अपने बच्चे को कब बताया था कि मैं उसकी तारीफ करता हूं? अंतिम बार मैंने अपने पति से कब कहा था कि मैं उसकी तारीफ करती हूं कि वह दिन भर कितनी मेहनत करता है? तारीफ के सच्चे बोलों से बढ़कर जीवन और किसी बात से सुखद नहीं बनता।

हम प्रोत्साहन की बातें कह सकते हैं। घर एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां लोग प्रोत्साहन की बातें सुनते रहते हैं। परन्तु परिवार के लोग आमतौर पर एक–दूसरे से निराशात्मक बात करते रहते हैं। हम देख सकते हैं कि बच्चों के खेलते समय उनके माता–पिता उनसे कैसे बात करते हैं। वे उन्हें प्रोत्साहन देने वाली या निराश करने वाली बात करते हैं? कई पति/पत्नी और माता–पिता अपने बच्चों के साथ अपमानजनक और ताने देने वाली बातें करते हैं। इससे कम दयालुता वाली कोई बात नहीं।

हम दिलचस्पी और लगाव की बातें बोल सकते हैं। स्कूल में छात्रों के बीच यानी सफल होने वालों और छोड़ जाने वालों में अंतर उदाहरण के लिए आमतौर पर माता–पिता के उनके स्कूल के काम में दिखाई गई दिलचस्पी से आता है। घर में जो कुछ कोई कर रहा है उस पर एक–दूसरे को जोश दिलाने वाली बातें करना आवश्यक है।

हम आराम से, गंभीरता से और प्रेम से बात कर सकते हैं। बोलने का ढंग शायद मुद्दे से अधिक महत्वपूर्ण न हो, पर यह आवश्यक है। इसलिए हमें अपनी आवाज के सुर को प्रेम से बात करने वाली बनाने का सचेत प्रयास करना चाहिए। बातचीत करने की विभिन्न शैलियों को ध्यान में रखने के बावजूद घर में लगातार चीखना दयालुता का माहौल नहीं बनाता।

कामों में कृपालुता

घर में हमें कामों में दयालु होना भी आवश्यक है। हमें दूसरों के प्रति दयालुता से काम करना चाहिए। किसी ने कहा है, "घर वह स्थान है जहां हम से बेहतरीन ढंग से व्यवहार किया जाता है और बदतर ढंग से काम किया जाता है।" कुछ पुरुष और स्त्रियां दिन भर बाजार में काम करके और हर मिलने वाले से बड़े प्यार से और शिष्टाचार से बात करते हैं, पर रात को अपने प्रियजनों के पास घर पहुंचने पर वे बदतमीजी से काम करते और परिवार के हर व्यक्ति से चिड़ते और रूखा व्यवहार करते है "हे मेरे भाईयो, ऐसा नहीं होना चाहिए" (याकूब 3:10)। जैसा हम दूसरों के प्रति कार्य करने में चौकस होते हैं वैसे ही हमें घर के दूसरों लोगों के प्रति काम करना

चाहिए। काम में क्या दयालुता है?

भाई जे. सी. बेली ने दयालुता के उदाहरण के रूप में उस अवसर का इस्तेमाल किया जिस पर एबेदमेलेक ने यिर्मयाह को कीचड़ के गड्ढे से बचाया था।

उस समय राजा विन्यामीन के फाटक के पास बैठा था सो जब एबेदमेलेक कूशी ने जो राजभवन में एक खोजा था, सुना कि उन्होंने यिर्मयाह को गढ्ढे में डाल दिया है, तब एबेदमेलेक राजभवन से निकलकर राजा से कहने लगा, हे मेरे स्वामी, हे राजा, उन लोगों ने यिर्मयाह भविष्यवक्ता से जो कुछ किया है वह बुरा किया है, क्योंकि उन्होंने उसको गढ्ढे में डाल दिया है; वहां वह भूख से मर जाएगा क्योंकि नगर में कुछ रोटी नहीं रही है। तब राजा ने एबेदमेलेक कूशी को यह आज्ञा दी कि यहां से तीस पुरुष साथ लेकर यिर्मयाह भविष्यद्वक्ता को मरने से पहिले गढ्ढे में से निकाल। सो एबेदमेलेक उतने पुरुषों को साथ लेकर राजभवन के भण्डार के तलघर में गया; और वहां से फटे-पुराने कपड़े और चिथड़े लेकर यिर्मयाह के पास उस गढ्ढे में रस्सियों से उतार दिए। और एबेदमेलेक कुशी ने यिर्मयाह से कहा, ये पुराने कपड़े और चिथड़े अपनी कांखों में रस्सियों के नीचे रख ले। सो यिर्मयाह ने वैसा ही किया। तब उन्होंने यिर्मयाह को रस्सियों से खींचकर गढ्ढे में से निकाला। और यिर्मयाह पहरे के आंगन में रहने लगा (यिर्मयाह 38:7-13)।

भाई बेली ने कहा कि कृपा उन चिथड़ों में दिखाई देती है जो एबेदमेलेक ने यिर्मयाह को अपनी त्वचा और रस्सी के बीच डालने के लिए दिए थे। इसका अर्थ यह हुआ कि कृपा वह अतिरिक्त बात यानी "दो मील जाना" (देखें 5:4) है जो दूसरों के लिए जीवन आसान और अधिक आनन्ददायक बना दे।

अपने बच्चों के प्रति "कृपा"..

- उनके साथ समय बिताना है,
- उनके साथ खेलना है,
- उन्हें अपने साथ घुमाने ले जाना है,
- उनकी चोट को चुमना है,
- सही काम न होने पर उन पर चिल्लाने के बजाय उन्हें सहारा देना है,
- असफल हो जाने पर उन्हें प्रोत्साहन देना और क्षमा करना है।

इनमें से एक भी बात माता-पिता होने की कोई विशेष जिम्मेदारी नहीं है। हम अपने बच्चों को इनके बिना भी खाना और कपड़ा और यहां तक कि आत्मिक अगुआई दे सकते हैं तौभी ऐसी चीजें देना कृपा ही है और यह हमारे साथ-साथ बच्चों के लिए भी प्रतिफल देने वाला है।

पति या पत्नी के प्रति कृपा इस प्रकार से दिखाई जा सकती है-

- प्राप्तियों को पहचानना और संकटों और असफलताओं को भूल जाना,
- हमेशा उसका हौसला बढ़ाना, कभी निराश न करना,
- वैसा ही खाना बनाना जैसा उसे पसंद है,
- ऐसी जगह जाना जहां उसे जाना अच्छा लगता हो,
- विशेष तरह से प्रेम दिखाना।

और किसी भी बात से बढ़कर कृपा शायद विचारवान होना है। विवाह के कई

विशेषज्ञ पति को उसी रोमांस को बनाए रखने की सलाह देते हैं जो विवाह में आमतौर पर पहले पहल होता है- अपनी पत्नी को छोटे-छोटे उपहार देना, उससे "प्रेम जताना।" बेशक इससे पत्नी को अच्छा लगेगा। परन्तु जो बात उसे सबसे अच्छी लगती है, हो सकता है कि वह पति ने वैसे न की हो जिसे रोमांटिक होना कहा जाता है, इसी से कि उसने उसका ध्यान किया है और उसके लिए केवल इसलिए कुछ किया है कि उसे यह अच्छा लगेगा। ऐसे देने में (उदाहरण के लिए, पति द्वारा अपनी पत्नी के लिए वह चीज खरीदना जिसे वह अपने लिए इस्तेमाल करना चाहता है) स्वार्थ नहीं है। संभवतया पति कुछ ऐसा कर सकता है जिसे आमतौर पर रोमांटिक होना नहीं बल्कि केवल अपनी पत्नी के लिए विशेष कार्य माना जाए। केवल यह दिखाने के लिए कि उसे उसका ध्यान है- और उसे वैसे ही अच्छा लगे। इस बात का महत्व नहीं है कि वह अपनी पत्नी के लिए उपहार लाता है या नहीं बल्कि उसकी भलाई के लिए विचारवान होना, ध्यान करना और उसकी परवाह करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

तो फिर, कृपा यह पूछना है, इस समय मेरी पत्नी की क्या आवश्यकता है जो मैं उसे दे सकता हूं? या मैं आज अपने पति की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कैसे सहायता कर सकती हूं? (देखें उत्पत्ति 2:18,20) छोटी-छोटी कृपा में निम्न बातें हो सकती हैं-

- उसके लिए कोई चीज खरीदना या बनाना जिसकी उसे आवश्यकता हो।
- घर के कामकाज में सहायता करना।
- उसके साथ बात करने और सचमुच में उसकी सुनने के लिए समय देना।
- इक्ट्ठे समय बिताना।

ये सभी काम कृपालुता के हो सकते हैं। ये छोटी-छोटी बातें हैं जिनका विवाह के संबंध में बड़ा महत्व हैं।

प्रभु भोज

जॉन स्टेसी

इससे पूर्व, प्रभु भोजन के संबंध में हमने यह देखा था प्रभु भोज का उद्देश्य क्या है और हमने सीखा था कि प्रभु भोज हम मसीह के बलिदान की याद दिलाता है, और उसे लेकर हम प्रभु की मृत्यु का प्रचार करते हैं, और उसके द्वारा हमें आत्मबल मिलता है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि प्रभु भोज में किन वस्तुओं को इस्तेमाल में लाना चाहिए। जिन दो चीजों का प्रभु भोज में उपयोग किया जाता है उन्हें यहूदियों के फसह के पर्व से लिया गया है। जिनका उपयोग यहूदी प्रत्येक वर्ष अपने फसह के भोज में करते थे। उसमें एक वस्तु थी रोटी। मत्ती 26:26 में हम इस प्रकार पढ़ते हैं कि जब वे खा रहे थे, तो यीशु ने रोटी ली और आशीष मांगकर तोड़ी और चेलों को देकर कहा लो खाओ, यह मेरी दे है। यीशु की देह को स्मरण करने के लिये निर्जीव और मटमैली अखमीरी रोटी से अच्छी और कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती थी। मरे हुए दानों को पीसकर, गूंधकर और पकाकर रोटी बनती है। प्रभु भोज की दूसरी वस्तु

है, दाख का रस। मत्ती 26:27, 28 में हम यूं पढ़ते हैं, फिर उसने कटोरा लेकर, धन्यवाद दिया और उन्हें देकर कहा, तुम सब इस में से पीओ। क्योंकि यह वाचा का मेरा वह लोहू है जो बहुतों के लिये पापों की क्षमा के निमित बहाया जाता है। यीशु ने एक जगह अपने आप को दाखलता और अपने अनुयायीयों को दाखलता की डालियां कहकर सम्बोधित किया था, इसलिये यीशु के लोहू को स्मरण करने के लिये दाख (अंगूर) के रस से अच्छी और क्या वस्तु हो सकती थी? (यूहन्ना 15:15)।

ऐसे ही, इस प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है, कि प्रभु भोज में कौन भाग ले सकता है? सबसे पहली बात इस संबंध में हमें यह याद रखनी चाहिए कि प्रभु भोज की मेज उसके राज्य के भीतर होती है। जैसे कि लूका 22:29-30 में हम पढ़ते हैं, यीशु ने कहा था, और जैसे मेरे पिता ने मेरे लिये एक राज्य ठहराया है वैसे ही मैं भी तुम्हारे लिये ठहराता हूं, ताकि तुम मेरे राज्य में मेरी मेज पर खाओ पीओ। मरकुस 14:25 में यीशु ने यूं कहा था, मैं तुम से सच कहता हूं, कि दाख का रस उस दिन तक फिर कभी न पीऊंगा जब तक परमेश्वर के राज्य में नया न पीऊं। बाइबल में लिखा है कि प्रभु के राज्य में होने के लिये हमें एक नया जन्म लेने की आवश्यकता है। यूहन्ना 3:3 में यीशु ने कहा था, कि मैं तुझ से सच-सच कहता हूं कि यदि कोई नए सिरे से न जन्में तो परमेश्वर का राज्य देख नहीं सकता। फिर यूहन्ना 3:5 में प्रभु ने इस प्रकार कहा था, कि जब तक कोई मनुष्य जल और आत्मा से न जन्में तो वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता। सो इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केवल वही लोग जिन्होंने यीशु की आज्ञा मानकर नया जन्म पाया है, और इस प्रकार उसके राज्य में हैं, वास्तव में प्रभु भोज में भाग ले सकते हैं। जिस प्रकार आप मेरे घर में आए बिना मेरी मेज पर भोजन नहीं कर सकते, ठीक वैसे ही आप प्रभु की मेज पर भी उसके राज्य के भीतर आए बिना उसके भोजन में शामिल नहीं हो सकते। जो लोग मसीह की सच्ची कलीसिया में हैं, प्रभु भोज में भाग लेते समय वे प्रत्येक उपस्थित जन से आग्रह करके कहते हैं कि प्रभु भोज में भाग लेने से पहले हर एक इंसान अपने आप को जांच लें। क्योंकि जो खाते-पीते समय प्रभु की देह को न पहचाने वह इस खाने और पीने से अपने ऊपर दण्ड लाता है। (1 कुरिन्थियों 11:29)।

विश्वास से या विचार से?

फ्रैंक चैसर

आप विश्वास से चलते हैं या विचारों से यानी भावनाओं से? आपके इस प्रश्न का उत्तर देने के ढंग से यह तय होगा कि आप अनन्तकाल में कहा रहेंगे। आपको कैसे मालूम कि आपका उद्धार हो चुका है? बहुत से लोगों का इन प्रश्न के लिए उत्तर होता है, क्योंकि मेरा मन कहता है। कितना खतरनाक है कि उद्धार जैसी महत्वपूर्ण बात केवल भावना पर आधारित है। जीवन के अन्य किसी भी क्षेत्र में किसी विशेष बात या कार्य के सही या गलत होने को ठहराने के लिए भावना या विचार को आधार नहीं बनाया जाता।

केक बनाने के लिए भावना नहीं चाहिए होती। इसके बजाय केक बनाने के लिए आवश्यक सामग्री और उसे बनाने का तरीका तथा यह पता होना आवश्यक है कि उसे कितने तापमान में बनाया जाए। इसके अलावा सामग्री बताई जाती है कि उसे बनाने के लिए क्या-क्या डाला जाए और कितनी मात्रा में डाला जाए और उसे बनाने के लिए कितना तापमान रखा जाए। मकान बनाने वाला कोई कारीगर कभी भावना से मकान बनाने का प्रयास नहीं करेगा। इसके उलट पहले वह नक्शा देखेगा ताकि उसे पता चल सके कि मकान में कहा क्या, और कितने साइज का बनाना है। बाहर घूमने जाने के लिए कोई भावना से काम नहीं लेगा। इसके बजाय नक्शा देखा जाएगा कि कहां-कहां जाना है और किस रास्ते से जाना है, कब दायें मुड़ना है या कब बाएं।

इसके अलावा केक को बनाने के लिए यह बताने के लिए कि ऐसी चीजें इस्तेमाल न की जाएं, कोई सामग्री के काम न करने के आधार पर पांच और चीजें डालने के लिए बहस नहीं करेगा। नक्शे से पता चलता है कि तीन बैडरूम होने चाहिए, यदि नक्शे में तीन बैडरूम बताए गए हैं तो सयाना ठेकेदार निश्चय ही चार बैडरूम बनाकर अपने काम को यह कहकर सही ठहराने का प्रयास नहीं कर सकता है कि नक्शे में तो नहीं कहा गया कि यह मत बनाना। कहीं जाने की इच्छा रखने वाला यात्री नक्शे में यह लिखा न होने पर कि इधर मत जाना किसी कि दिशा में जाने की छूट में अपने विचार नहीं दे सकता।

बहुत से लोगों को धर्म में यही तर्क लागू करना अच्छा नहीं लगता। हमें रूप को देखकर नहीं, विश्वास से चलने की आज्ञा है (2 कुरिन्थियों 5:7)। विश्वास केवल परमेश्वर के वचन से मिलता है (रोमियों 10:17)। इस कारण विश्वास से चलने के लिए परमेश्वर के वचन की शिक्षाओं के अनुसार चलना आवश्यक है। यदि कोई कार्य परमेश्वर के वचन के द्वारा अधिकृत नहीं है तो वह विश्वास से किया हुआ कार्य नहीं होगा।

केवल यह लगता होने पर कि उसका उद्धार हो गया है, किसी को पता नहीं चल सकता कि उसका उद्धार हो सकता है। केवल इस कारण कि उसे लगता है कि परमेश्वर को स्वीकार्य है, उसे पता नहीं चल सकता कि उसकी आराधना परमेश्वर को स्वीकार्य है। न ही केवल भावना के आधार पर यह पता लगाना संभव है कि कोई स्वर्ग के मार्ग पर है या नहीं। परमेश्वर के वचन को जो कि हमारे लिए नक्शे का काम करता है, देखा जाना आवश्यक है। जिस प्रकार सांसारिक तम्बू बनाने के लिए मूसा ने परमेश्वर के दिए नमूने को बड़ी चौकसी से माना था (निर्गमन 25:40), वैसे ही हमें भी अपने आत्मिक जीवनों के निर्माण के लिए परमेश्वर के ईश्वरीय नमूनों को मानने में चौकसी करनी आवश्यक है।

हम में यह समझ होनी आवश्यक है कि भावनाएं अविश्वसनीय होती हैं यानी वे भरोसे के योग्य नहीं होती। युद्ध के बाद कई बार स्त्रियों ने यह सोचकर कि उनके पतियों की मृत्यु हो गई होगी, दूसरा विवाह कर लिया, जबकि कई महीनों या सालों के बाद पता चला कि वे मरे नहीं थे। सच है कि भावनाएं भ्रमित करने वाली और अविश्वसनीय होती हैं। जो मानवीय दृष्टिकोण से सही लगता है, हो सकता है कि वह गलत हो। ऐसा मार्ग है, जो मनुष्य को ठीक देख पड़ता है, परन्तु उसके अन्त में मृत्यु

ही मिलती है (नीतिवचन 14:12)।

विचार आमतौर पर किसी गवाही को माने जाने और विश्वास के कारण बनते हैं। उदाहरण के लिए किसी को संदेश मिलता है कि उसका प्रियजन अभी-अभी सड़क दुर्घटना में मारा गया है। वह एकदम दुखी हो जाता है। थोड़ी देर बाद एक और संदेश मिलता है कि बहुत बड़ी चूक हो गई है, पहला संदेश गलत था और उसका प्रियजन जीवित है और ठीक-ठाक है। एकदम से उसके विचारों में एक नाटकीय परिवर्तन आ जाता है। वह आनन्द से भर जाता है। किसी के विचार या भावनाएं मिली जानकारी या गवाही के आधार पर बनते हैं। यदि किसी को बुरा संदेश मिल जाए और वह उसे मान लेता है तो वह मायूस हो जाता है, वह संदेश चाहे सही हो या गलत। इसीलिए प्रतिदिन के जीवन में और धार्मिक मामलों में भी भावनाएं या विचार अविश्वसनीय ही होते हैं।

बहुत से लोग धार्मिक गलती करते हैं क्योंकि वे अपनी भावनाओं के अनुसार चलते हैं और उनकी भावनाएं ऐसी धार्मिक शिक्षा पर आधारित होती हैं जो परमेश्वर के वचन के साथ मेल नहीं खाती है। गलत होने पर भी आत्मिक रूप में किसी को लग सकता है कि वह सही है। मसीही बनने से पहले पौलुस एक भक्त फरीसी था। अपने बारे में उसने बताया कि वह बाप-दादों की व्यवस्था की ठीक रीति पर सिखाया गया और परमेश्वर के लिए धुन लगाए था (प्रेरितों 22:3)। परमेश्वर के सामने उसने शुद्ध विवेक के साथ जीवन बिताया था (प्रेरितों 23:1)। पौलुस को लगता था कि आत्मिक रूप में वह सुरक्षित है। उसे लगता था कि वह सही है जबकि वह गलत था। यदि पौलुस तय कर लेता कि भावनाओं से चलना है तो वह कभी भी यहूदी मत को त्याग कर मसीहियत को न अपनाता।

विश्वास से चलना केवल परमेश्वर में विश्वास करने और मसीह के प्रभु होने को मानने से कहीं बढ़कर है। दृष्टात्मा भी विश्वास रखते और थरथराते है (यकूब 2:19)। यीशु ने कुछ यहूदियों की बात की, जो उस पर विश्वास रखते थे (यूहन्ना 6:20)। परन्तु बाद में उसने इन्हीं यहूदियों को शैतान की संतान बताया (यूहन्ना 8 :44), क्योंकि उन्होंने उसकी इच्छा से मेल खाते हुए काम न करके अपने विश्वास को दिखाने से इंकार कर दिया था। यहूदियों के प्रधान अधिकारियों में से कइयों ने मसीह पर विश्वास किया था, "परन्तु फरिसियों के कारण प्रकट में नहीं मानते थे, कहीं ऐसा न हो कि वे आराधनालय में से निकाले जाएं, क्योंकि मनुष्यों की ओर से की गई प्रशंसा उनको परमेश्वर की ओर से प्रशंसा से अधिक प्रिय लगती थी (यूहन्ना 12:42, 43)। अग्रिप्पा को मसीह के विषय में कही गई नबियों की बातों पर विश्वास तो था परन्तु वह मसीही नहीं बन पाया प्रेरितों 26:27, 28)। इस प्रकार तुम ने देख लिया कि मनुष्य केवल विश्वास से ही नहीं, वरन कर्मो से भी धर्मी ठहरता है (याकूब 2:24)।

विश्वास जो बचाता है, वही है जो आज्ञा मानता है। विश्वास जिसका लाभ है, वही है जो प्रेम के द्वारा प्रभाव डालता है (गलातियों 5:6)। परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए विश्वास से आज्ञा मानकर दिखाना आवश्यक है (रोमियों 16:26)। स्वर्ग के राज्य में कौन जाएगा? यीशु ने इसका उत्तर दिया, वही जो मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलता है (मत्ती 7:21)। उद्धार चुनिंदा लोगों के लिए यानी सब आज्ञा मानने वालों के लिए सुरक्षित है (इब्रानियों 5:9)।

इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य का उद्धार परमेश्वर के अनुग्रह और लहू के द्वारा होता है, जब वह आज्ञाकारी विश्वास में परमेश्वर की इच्छा को मान लेता है। परमेश्वर की इच्छा को सुनकर, उस पर विश्वास लाकर और उसे मानकर मनुष्य को अनुग्रह के द्वारा उद्धार की वास्तविकता का आनन्द प्राप्त होता है। जिससे उसे अच्छी भावना का अनुभव होता है। मसीही व्यक्ति अपने उद्धार के प्रमाण के रूप में अपनी भावनाओं को नहीं दिखाता है। वह बाइबल में बताई ईश्वरीय सच्चाई और उस सच्चाई को मानने की ओर ध्यान दिलाता है। तुम सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा (यूहन्ना 8:32)। परन्तु परमेश्वर की इच्छा को मानने में विश्वास दिखाने और अनुग्रह से उद्धार का आनन्द पाना निश्चय ही अच्छा लगने का उचित कारण है।

आप विश्वास से चलते हैं या विचार से? याद रखें कि अशिक्षित मन सब वस्तुओं से अधिक धोखा देने वाला होता है (यिर्मयाह 17:9)। सुलैमान ने इस की पुष्टि की, जो अपने ऊपर भरोसा रखता है, वह मूर्ख है (नीतिवचन 28:26)। परमेश्वर और उसके वचन में भरोसा रखें, न कि मनुष्य की चंचल भावनाओं पर।

दोष लगाना और यथार्थ न्याय करना दोनों में बड़ा फर्क है

टिम निकोलस

दोष लगाना बड़ा आसान काम है जो लोग अपने साथियों की खामियों को मान लेते हैं, उन्हें इसमें कोई दिक्कत नहीं होती। ये लोग बड़े आराम से अपने कुछ नियम बना लेते हैं और उन्हीं के अनुसार दूसरों में खोट निकालते हैं। ऐसे नियम दूसरों के काम करने से पहले या बाद में, कभी भी बनाए जा सकते हैं। वे अपने स्वभाव से हल्के होते हैं और अपने आप ही अपने बनाए आदेश जारी करने के लिए आसानी से बदल जाते हैं। वे अन्त में एक-दूसरे के विरूद्ध नियम बना सकते हैं, परन्तु फिर वे नियम लागू हो जाते है। ये स्वयं न्यायी किसी भी पक्ष के विरूद्ध इस्तेमाल करने के लिए अपने साथ हथियार रखते हैं। यह निर्णय लेने के बाद कि हमला करना है या बचाव, वे उसी के अनुसार नियम भी चुनते हैं और अपने पक्ष में इस्तेमाल करके उसका लाभ उठाते हैं। वे अपने बनाए नियमों का इस्तेमाल बड़ी चतुराई से करके, किसी भी बुराई को उचित ठहरा सकते हैं। वे नैतिक तौर पर निष्पक्ष मामलों को अपनी पसंद के अनुसार काला रंग देकर उस पर दोषी ठहरा देते हैं या सफेद रंग देकर उसे शुद्ध ठहरा देते हैं। परन्तु उनका खुद का बनाया यह नियम परमेश्वर की ओर से गलत ठहरता है।

दोष मत लगाओ कि तुम पर भी दोष न लगाया जाए। क्योंकि जिस प्रकार तुम दोष लगाते हो, उसी प्रकार तुम पर भी दोष लगाया जाएगा; और जिस नाप से तुम नापते हो, उसी नाप से तुम्हारे लिये भी नापा जाएगा। तू क्यों अपने भाई की आंख के तिनके को देखता है, और अपनी आंख का लट्ठा तुझे नहीं सूझता? जब तेरी ही आंख में लट्ठा है, तो तू अपने भाई से कैसे कह सकता है, ला मैं तेरी आंख से तिनका निकाल दूं। हे कपटी पहले अपनी आंख में से लट्ठा निकाल ले, तब तू अपने भाई की आंख

का तिनका भली-भांति देखकर निकाल सकेगा (मत्ती 7:1-5)।

हाय उन पर जो बुरे को भला और भले को बुरा कहते, जो अंधियारे को उजियाला और उजियाले को अंधियारा ठहराते और कड़वे को मीठा और मीठे को कड़वा करके मानते हैं। हाय उन पर जो अपनी दृष्टि में ज्ञानी और बुद्धिमान है। (यशायाह 5:20, 21)।

यूहन्ना और यीशु दोनों को ही ऐसे लोगों द्वारा, जो अपने विरोधियों के लिए मौका देखकर नियम बनाते हैं, सताया गया था।

मैं इस समय के लोगों की उपमा किससे दूं? वे उन बालकों के समान है जो बाजारों में बैठे हुए एक दूसरे से पुकार कर कहते हैं, हम ने तुम्हारे लिये बांसली बजाई और तुम न नाचे, हम ने विलाप किया और तुम ने छाती नहीं पीटी। क्योंकि यूहन्ना न खाता आया और न पीता, और वे कहते हैं, उसमें दुष्टात्मा है। मनुष्य का पुत्र खाता-पिता आया और वे कहते है, देखो, पेटू पियक्कड़ मनुष्य महसूल लेने वालों और पापियों का मित्र पर ज्ञान अपने कामों से सच्चा ठहराया गया है (मत्ती 11:16-19)।

आप अगर कोई अच्छी सलाह नहीं ले सकते तो ऐसी आलोचनाओं से बचें। यदि ऐसे लोग आपके मित्रों में से हैं तो उनके साथ सम्बंध रखने के लिए आपको ध्यान रखना चाहिए और उनके द्वारा किसी भी झगड़े में आपको पक्ष लेने से बचना चाहिए। उनके कदम फिसलने वाले हैं और उनके तर्कों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उनकी सहायता हर समय सच्चाई को नकारा कर देती है, और आपका उनके साथ रहना भलाई के लिए हानिकारक हो जाएगा। परमेश्वर के मापदण्ड बनाए जा चुके हैं। वे प्रामाणिक हैं और उन्हें बदला नहीं जा सकता। उसने बता दिया है कि क्या गलत है और क्या सही। क्या अच्छा है और क्या बुरा। उसने स्पष्ट बता दिया है और सब के लिए उन्हें अपनी बाइबल में लिख दिया है। उसकी संतान वे लोग हैं जिन्होंने अपने विचारों को त्याग दिया है। उन्हीं विचारों को अब वे दूसरों पर थोपना नहीं चाहते। वे जब परमेश्वर के बताए नियम अपने जीवन में लागू करते हैं और फिर ऐसा ही करने के लिए लोगों को सिखाते हैं तो ठीक ठीक न्याय करते हैं (यूहन्ना 7:24)। वे परमेश्वर की समझ का इस्तेमाल करते हैं न कि अपनी समझ का।

आपके जीवन व चाल-चलन के लिए जो कुछ भी परमेश्वर का वचन बताता है, उस पर ध्यान दें। जो लोग परमेश्वर के वचन के अनुसार आपकी गलतियां आपको बता सकते हैं और बताते भी हैं, वे आपके मित्र हैं। आपको चाहिए कि आप उन्हें अपने मित्र समझें, जो परमेश्वर के वचन को जानते हैं। परन्तु जो आपकी खामी आपको दिखाते नहीं हैं, वास्तव में वे न तो आपके मित्र हैं और न परमेश्वर के सेवक हैं।

परमेश्वर की सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता

रेमण्ड सी. केलसी

क्या तू ईश्वर का गूढ़ भेद पा सकता है? और क्या तू सर्वशक्तिमान का मर्म पूरी रीति से जांच सकता है? वह आकाश सा ऊंचा है; तू क्या कर सकता है? वह अधोलोक से गहिरा है, तू कहां समझ सकता है? उसकी माप पृथ्वी से भी लम्बी है और समुद्र से भी चौड़ी है (अय्यूब

11:7-9)।

परमेश्वर को जानकर हमारे दिमाग अनन्तकाल तक भर जाएंगे। निश्चय ही, हम इस विषय के समाप्त होने की आशा नहीं कर सकते। नाशवान मनुष्य के लिए परमेश्वर को समझना संभव नहीं है। ऐसा नहीं है कि उसने मनुष्य से अपने आपको छुपाने की कोशिश की है। इसके विपरीत, वह तो अपने आपको उस पर प्रकट करने और उसे अपना ज्ञान देने की प्रतीक्षा में रहता है। परमेश्वर को समझने में हमारी असफलता इसलिए नहीं है कि वह हम पर अपने आपको प्रकट नहीं करना चाहता, बल्कि हमारी अपनी ही सीमाएं है। परमेश्वर तो अपने आपको मनुष्य पर प्रकट करने के लिए नीचे उतर आया है, इसलिए हम उसे निश्चित सीमा तक जान सकते हैं। परमेश्वर को जानने का अर्थ है अनन्त जीवन पाना (यूहन्ना 17:3)। हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए कि हमने परमेश्वर के साथ और बेहतर पहचान बनानी है, बेशक उसकी सम्पूर्णताओं को पूरी तरह से समझना असंभव है।

कहते हैं कि रोलैण्ड हिल नामक एक प्रचारक एक बार अपने सुनने वालों को परमेश्वर के प्रेम के बारे में समझाने का यत्न कर रहे थे। अचानक, रूककर उन्होंने अपनी आंखें स्वर्ग की ओर उठाकर कहा, मैं इस बड़े विषय को नहीं समझ सकता, फिर भी मुझे नहीं लगता कि समुद्र की छोटी से छोटी मछली ने भी कभी समुद्र के विशाल होने की शिकायत की होगी। मैं भी नहीं करता। अपनी कमजोर शक्ति के साथ मैं आनन्द से एक ऐसे विषय में डुबकी लगा सकता हूं जिसकी अमापनीयता को मैं कभी समझ नहीं पाऊंगा। यह भावना बिल्कुल वैसी ही है जो पौलुस को अपने अदभुत स्तुतिगानों में कहने को मिली थी, आहा! परमेश्वर का धन और बुद्धि और ज्ञान क्या ही गंभीर है। उसके विचार कैसे अथाह, और उसके मार्ग कैसे अगम हैं (रोमियों 11:33)।

परमेश्वर की असीमिता का अध्ययन करने के लिए हमारे दिमाग में भी यही विचार होना चाहिए। हमारा प्रभु महान और अति सामर्थी है; उसकी बुद्धि अपरम्पार है (भजन संहिता 147:5)। अपरम्पार शब्द में किसी भी प्रकार की सीमा न होने का संदेश मिलता है। परमेश्वर के प्रकार (कम्पास) से बढ़कर कुछ भी नहीं है। वह अमापनीय है अर्थात इसे मापा नहीं जा सकता और उसकी महानता की सीमाओं की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

परमेश्वर के प्रेम, दया तथा न्याय आदि कुछ गुण मानवीय जीवों में पाए जाते हैं जबकि उसके दूसरे गुणों की व्याख्या भी नहीं की जा सकती। उसके कुछ निराकार गुणों के लिए, मनुष्य के दिमाग में कोई भी बात नहीं है, और उन्हें निश्चित करने के लिए हमारे व्याख्यात्मक शब्द अपर्याप्त हैं। हमें ऐसी भाषा का जिसे हम समझ सकते हैं और ऐसे उदाहरणों का जो हमें मिल सकते हैं, इस्तेमाल करना चाहिए, परन्तु इसके साथ ही अपने अपर्याप्त होने का भी स्मरण रखना चाहिए।

सर्वव्यापकता

आइए पहले उस गुण पर ध्यान दें जिसे हम सर्वव्यापकता कहते हैं। यह शब्द पवित्र शास्त्र में नहीं मिलता है, परन्तु सम्पूर्ण बाइबल में यह तथ्य सिखाया और पहले से माना जाता है कि परमेश्वर हर जगह है। प्रकाशन का कोई भी विचार सर्वव्यापक होने की बात से अधिक कठिन नहीं है। उसे समय या स्थान की धारणाओं से सीमित नहीं किया जाता।

हमें अस्तित्व की दो इकाइयों अर्थात परमेश्वर और सृष्टि के बारे में ज्ञान है। इसमें परमेश्वर और वह जो परमेश्वर नहीं है, सब शामिल है। सर्वव्यापकता का अर्थ है कि

परमेश्वर, अर्थात एक इकाई दूसरी इकाई अर्थात सृष्टि के सभी भागों में मिलकर इसे भर देती है। परमेश्वर हर जगह है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर जगह उसका एक भाग है, बल्कि इसका अर्थ यह है उसकी सम्पूर्णता हर जगह है। पौलुस ने अथेने, अरियुपगुस में अपने प्रवचन में ऐलान किया था कि परमेश्वर हम में से किसी से दूर नहीं (प्रेरितों 17:27)। वह पृथ्वी के दूसरी ओर किसी व्यक्ति के पास इस समय उतना ही निकट है जितना हमारे। परमेश्वर को अपनी पसंद का कार्य करने या प्रार्थना का उत्तर देने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वह सारी सृष्टि में निवास करता है। पूरे संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां आप परमेश्वर को किसी क्षण भी अपने से दूर पाये। परमेश्वर के निकट आने के लिए तीर्थ यात्रा की नहीं, बल्कि पश्चाताप करने, विनम्र होने और आज्ञा मानने की आवश्यकता है। उसके पास आने का अर्थ है उसके जैसा होना; इसके विपरीत, उससे दूर होने का अर्थ है उसके जैसा न होना।

आप पूछ सकते हैं, क्या यह सत्य नहीं है कि परमेश्वर तो स्वर्ग में है? हां परन्तु वह केवल वहां ही नहीं है। यहोवा की यह वाणी है, क्या कोई ऐसे गुप्त स्थानों में छुप सकता है कि मैं उसे न देख सकूं? क्या स्वर्ग और पृथ्वी दोनों मुझ से परिपूर्ण नहीं है? (यिर्मयाह 23:24)। सुलैमान ने कहा था, स्वर्ग में वरन सबसे ऊंचे स्वर्ग में भी तू नहीं समाता, फिर मेरे बनाए हुए इस भवन में क्योंकर समाएगा (1 राजा 8:27)। यीशु ने भी समझाया था कि परमेश्वर आत्मा है इसलिए वह किसी एक स्थान से बंधा हुआ नहीं है (यूहन्ना 4:24)। बहुत से लोगों को लगता है कि परमेश्वर पृथ्वी से बहुत दूर आकाश में रहता है? परन्तु परमेश्वर तो हर जगह है और हर जगह उसे पाया जा सकता है। कहते हैं कि परमेश्वर एक ऐसा चक्र है जिसका केन्द्र तो हर जगह है और जिसका घेरा कहीं नहीं है।

परमेश्वर और सृष्टि में संबंध बनाने के लिए सर्वव्यापकता और श्रेष्ठता दो शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। इस विचार को ध्यान में रखते हुए अस्तित्व की दो इकाइयां, परमेश्वर तथा सृष्टि (अर्थात परमेश्वर और जो परमेश्वर नहीं है) मिलती है। श्रेष्ठता का अर्थ है कि परमेश्वर दूसरी किसी भी इकाई से श्रेष्ठ है अर्थात वह संसार से बड़ा है और इससे ऊपर है। यद्यपि वह संसार से श्रेष्ठ है, फिर भी वह इसमें रहता है और इसमें व्याप्त है, प्रेम से तथा इसमें काम करने से इसे अपने निकट खींचता हैं सर्वव्यापकता का अर्थ यही है। परमेश्वर अपने संसार में दूर रहकर कार्य नहीं करता है।

सर्वव्यापकता में परमेश्वर के स्थान के साथ-साथ समय में निवास करने का विचार भी शामिल है। यशायाह ने परमेश्वर को महान और उत्तम और सदैव स्थिर (यशायाह 57:15) रहने वाला बताया है। भजन लिखने वाले ने उसे पहाड़ों के उत्पन्न होने से पहले अस्तित्व में बताया और कहा कि, अनादिकाल से अनन्तकाल तक तू ही ईश्वर है, (भजन संहिता 90:2)। समय के संबंध में इससे परमेश्वर की असीमितता का पता चलता है। वह अनन्तकाल में वास करता है। वह समय के उस काल में वास करता है जिसे हम भूत, भविष्य और वर्तमान के रूप में जानते हैं।

सर्वज्ञता

परमेश्वर की सर्वव्यापकता से सर्वज्ञता अर्थात सम्पूर्ण ज्ञान का तथ्य जुड़ा हुआ है। सर्वव्यापकता का अर्थ है सर्वज्ञता, सर्वज्ञता को हम सर्वव्यापकता भी कह सकते हैं। परमेश्वर

सबके लिए विद्यमान है। उसका सम्पूर्ण मन अपनी उपस्थिति में होने वाले को बिना जाने विद्यमान नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में परमेश्वर सब कुछ जाने बिना सर्वव्यापक नहीं हो सकता। भजन 139 में लेखक परमेश्वर के दोनों गुणों अर्थात उसकी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता को भक्तिपूर्ण भय से मना रहा था। भजन लिखने वाले द्वारा दिया गया विचार यह है कि संसार तथा अनन्तकाल में हर जगह है। यदि परमेश्वर के ज्ञान से कोई भी नहीं बच सकता तो यह इसलिए है कि वह उसकी उपस्थिति से भाग नहीं सकता। अस्तित्व की दो इकाइयों में से एक, अर्थात परमेश्वर दूसरी, इकाई अर्थात संसार का सम्पूर्ण ज्ञान रखता है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर अपने बारे में भी पूरा ज्ञान रखता है।

सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान अधूरा है। हम किसी भी बात को पूरी तरह नहीं समझ पाते, चाहे वह छोटी से छोटी ही हो और जिससे हम पूरी तरह से परिचित होते हैं, क्योंकि हमें इस बात की पूरी समझ नहीं है कि उस वस्तु का संबंध किस से है। इसलिए परमेश्वर की सर्वज्ञता को समझने में हमारा अनुभव हमें थोड़ी ही सहायता करता है। हमारे लिए सारे ज्ञान को पाना संभव नहीं है। हमारा सारा ज्ञान परमेश्वर के सामने अज्ञानता तथा मूर्खता ही है। अब तक के सबसे बुद्धिमान लोगों का ज्ञान जोड़ने पर भी उस सर्वज्ञ अर्थात परमेश्वर के ज्ञान के बराबर नहीं हो सकता। सर्वज्ञता का अर्थ है कि भूत, वर्तमान तथा भविष्य सबका एक ही समय ज्ञान होना। संसार के आरंभ से परमेश्वर अपने सभी कामों को जानता है (प्रेरितों 15:18)। परमेश्वर का ज्ञान कितना व्यापक है। पतरस ने कहा, हे प्रभु तू तो सब कुछ जानता है (यूहन्ना 21:17)। अय्यूब ने कहा था, वह तो पृथ्वी की छोर तक ताकता रहता है, और सारे आकाशमण्डल के तले देखता भालता है (अय्यूब 28:24)। सितारों की बात करते हुए यशायाह ने प्रकट किया कि, वह इन गुणों को गिन गिन कर निकालता, उन सबको नाम ले लेकर बुलाता है (यशायाह 40:26)। परमेश्वर इस सृष्टि की हर बात को जानता है।

हमारा परमेश्वर मनुष्य से संबंधित सभी बातों को जानता है। वह न केवल उन बातों को ही जानता है जो भूत में घटित हो चुकी है, बल्कि उसका ज्ञान भावी किसी भी घटना के संबंध में भी वैसा ही है। यीशु ने कहा था कि यदि उसकी पीढ़ी में किए जाने वाले आश्चर्यकर्म सूर और सैदा में किए जाते तो वहां के लोग मन फिरा लेते (मत्ती 11:21)। परमेश्वर जानता है कि मनुष्य के भीतर क्या है:

यहोवा की आंखें सब स्थानों में लगी रहती हैं, वह बुरे भले दोनों को देखती रहती है (नीतिवचन 15:3)।

और सृष्टि की कोई वस्तु उससे छिपी नहीं है वरन जिससे हमें काम है, उसकी आंखों के सामने सब वस्तुएं खुली और बेपरद हैं (इब्रानियों 4:13)।

एक अवसर पर परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए, प्रेरितों ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा था कि, तू जो सब के मन जानता है (प्रेरितों 1:24)। यीशु ने हमें यह आवश्वासन दिया है कि हमारे सिर के बाल तक भी गिने हुए हैं और परमेश्वर को गिरने वाली प्रत्येक चिड़िया का ज्ञान होता है (मत्ती 10:29, 30)। उसने हमें इस तथ्य से भी आश्वस्त किया हैकि तुम्हारा पिता तुम्हारे मांगने से पहिले ही जानता है, कि तुम्हारी क्या आवश्यकता है (मत्ती 6:8)। परमेश्वर के ज्ञान में सब बातें शामिल हैं और उनकी कोई सीमा नहीं है।

फिलेमोन

ब्रूस मैक्लार्टी

प्राचीन पत्रों में हो या आधुनिक ईमेलों में, अभिवादन या सलाम आमतौर पर ठहराए हुए फार्मूले होते हैं जिनसे लेखक सावधानी से संदेश का आरंभ करता है। जिस कारण कई बार उन्हें जल्दी में पड़ा जाता है या पूरी तरह से छोड़ दिया जाता है जिससे पाठक उत्सुकता वश पत्र के विषय पर आ जाता है। बेपरवाही से पढ़ना फिलेमान के पत्र के आरंभ के लिए नहीं होना चाहिए। वास्तव में पत्र की सामाजिक गतिशीलता और भावनात्मक तीर्वता आरंभिक आयतों में दिखाई गई है।

फिलेमोन 1–3

पौलुस की ओर से, जो मसीह यीशु का कैदी है, और भाई तीमुथियुस की ओर से हमारे प्रिय सहकर्मी फिलेमोन। और बहिन अफ्फिया, और हमारे साथी योद्धा अर्खिप्पुस, और फिलेमोन के घर की कलीसिया के नाम। हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से अनुग्रह और शांति तुम्हें मिलती रहे।

आयत 1. पौलुस यूनानी और हिन्दी दोनों बाइबलों में पहला शब्द मिलता है। पहले तरतुस के शाऊल के रूप में प्रसिद्ध (देखें प्रेरितों 13:9; 21:39), अन्य जातियों का यह प्रेरित मसीही मिशनरी था जिसने नये नियम में पाए जाने वाले कम से कम तेरह पत्र लिखे। कई अवसरों पर उसने अपने पत्रों को लिखवाया (रोमियों 16:22)। जबकि अन्य अवसरों पर उसने पत्र की प्रमाणिकता का संकेत देने के लिए अंतिम टिप्पणी लिखी (कुलुस्सियों 4:18; 2 थिस्सलुनीकियों 3517)। फिलेमोन को उसने पूरा पत्र या केवल आयत 19 वाला वचनपत्र अपने हाथ से लिखा हो सकता है।

पौलुस ने अपना परिचय कैदी के रूप में करवाया जो आयत 9 में दोहराया गया है। पहले उसने अपने कुरिन्थि आलोचकों को लिखा था कि उसने उनसे अधिक कैद देखी थी (2 कुरिन्थियों 11:23)। पौलुस के लिए कैदी होना बार-बार मिलने वाला अनुभव था और उसके जीवन के अंतिम चार वर्ष जिनका वर्णन प्रेरितों 23–28 में मिलता है पूरी तरह से कैदी के रूप में दिखाए गए। रोमी नागरिक के रूप में पौलुस को जेल में गैर नागरिकों से होने वाले बर्ताव से बेहतर बर्ताव का हकदार था (प्रेरितों 16:35–39; 22:25–29)।

पौलुस को चाहे रोमी सरकार द्वारा कैद में डाला गया था परन्तु अपने मन में वह वास्तव में मसीह यीशु का कैदी था। वह अपने आपको मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया, मानता था (गलातियों 2:20) और उसका मानना था कि वह और तीमुथियुस मसीह यीशु के दास, बन गए हैं (फिलिप्पियों 151)। अगबुस नबी द्वारा चेतावनी दिए जाने पर कि यरूशलेम के यहूदी उसे बांधकर उसे अन्य जातियों के हाथों सौंप देंगे, पौलुस ने अपने समर्थकों से कहा था कि, तुम क्या करते हो, कि रो रोकर मेरा मन तोड़ते हो, मैं तो प्रभु के यीशु के नाम के लिए यरूशलेम में न केवल बांधे जाने ही के लिए वरन मरने के लिए भी तैयार हूं (प्रेरितों 21:13)।

मसीह यीशु अपने प्रभु के लिए कहने का पौलुस का एक पसंदीदा ढंग था। यीशु जिसका अर्थ यहोवा उद्धार करता है (मत्ती 1:21), परमेश्वर के पुत्र को उसके जनम पर दिया गया नाम था। मसीह (यूनानी में खिस्तुस) का अर्थ है अभिषिक्त और वह भविष्यद्वाणी की

हुई भूमिका थी जिसे यीशु ने पूरा किया (मत्ती 16:16)। मसीह और यीशु नाम चाहे दो हैं, पर आज उन्हें इक्ट्ठे या एक-दूसरे के स्थान पर इस्तेमाल किया जाता है। यीशु उसका नाम है और मसीह उसका पद है। पौलुस ने कईबार उसे मसीह यीशु, मसीह यीशु और यीशु मसीह कहा।

सलाम में मिलने वाले शब्द बेशक महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण वह शब्द है जो इसमें नहीं मिलता, और वह शब्द है प्रेरित। कई अवसरों में पौलुस ने अपने पत्रों का आरंभ अपना परिचय, प्रेरित पौलुस कहते हुए दिया। इस अवसर पर उसने ऐसा नहीं किया। पहली नजर में यह अजीब लग सकता है परन्तु शीघ्र ही पाठक इस बात की सराहना करता है कि पौलुस ने अपने आपको प्रेरित न कहकर कैदी क्यों कहा। उसके पास प्रोत्साहित करने के लिए बढ़िया मिलाप था और बहुत सावधान होने के कारण उसने ऐसा कुछ नहीं कहा जिसे अधिकारात्मक दक्ष या कब्जा करने वाला हो सके (आयत 140। मसीह यीशु का प्रेरित पौलुस नहीं बल्कि मसीह यीशु का कैदी पौलुस ऐसे कार्य को आरंभ करने का कहीं अधिक ढंग था। उसने तय कर लिया था कि जब फिलेमान सही काम करेगा तो वह दबाव से नहीं पर (उसके) आनन्द से हो (आयत 14)।

इस पत्र का सहप्रेषक भाई तीमुथियुस था। पौलुस की दूसरी मिशनरी यात्रा के आरंभ से ही (प्रेरितों 16:1)। तीमुथियुस उसका भरोसेमंद साथी और प्रशिक्षार्थी था। जेल की पत्रियों में से एक और में पौलुस ने तीमुथियुस में अपने भरोसे के विषय में यू लिखा-" मुझे प्रभु यीशु में आशा है, कि मैं तीमुथियुस को तुम्हारे पास तुरंत भेजूंगा, ताकि तुम्हारी दशा सुनकर तुझे शांति मिले। क्योंकि मेरे पास ऐसे स्वभाव का कोई नहीं, जो शुद्ध मन से तुम्हारी चिंता करे। क्योंकि सब अपने स्वार्थ की खोज में रहते हैं, न कि यीशु मसीह की। पर उसको तो तुम ने परखा और जान भी लिया है, कि जैसा पुत्र पिता के साथ करता है, वैसा ही उसने सुसमाचार के फैलाने में मेरे साथ परिश्रम किया..." (फिलिप्पियों 2:19-23)।

इस सलाम में चाहे पौलुस के साथ तीमुथियुस का नाम था परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्र का लेखक पौलुस है न कि तीमुथियुस आयत 4 से प्रथमपुरुष बहुवचन (हम और हमें) के बजाय प्रथम पुरुष एकवचन (मैं और मुझे) में लिखा। मुझ बूढ़े पौलुस को जो अब मसीह यीशु के लिए कैदी हूं (आयत 9) पत्र का मुख्य लेखक था। पत्र का पहला सम्बोधन हमारे प्रिय सहकर्मी फिलेमोन के नाम था। वह कुलुस्से की कलीसिया का सदस्य होगा क्योंकि उसके दास उनेसिमुस का नाम कुलुस्सियों के नाम पत्र में तुम ही में से बताया गया है (4:9)। इसके अलावा फिलेमोन के बारे में नया नियम जो कुछ भी कहता है वह उस पत्र में है जो उसके नाम से है। वह दास का स्वामी मसीही था जो अपने घर में कुलुस्से की कलीसिया को स्थान देता था। किसी समय वह पौलुस के प्रचार के प्रभाव में आ गया था। चाहे सीधे तौर पर इफिसुस में हो या प्रोक्ष रूप में इपफ्रास के द्वारा और वह मसीही बन गया था (देखें आयत 19)। पौलुस ने उसे बड़ी कोमलता से (हमारा प्रिय भाई) और आदर से (सहकर्मी) सम्बोधित किया।

आयत 2. बहन अफफिया वह दूसरा व्यक्ति थी जिसे समबोधित किया गया। उसके बारे में पक्के तौर पर इतना ही पता चल सकता है कि वह कुलुस्से की एक मसीही स्त्री थी। यह पक्का पता नहीं है कि वह फिलेमोन की पत्नी थी या उसकी बहन। उसके नाम के इस उल्लेख के संबंध में मौप्सुएशिया के थियोडोर (ईस्वी 350-428) का अवलोकन है, पौलुस

फिलेमोन और अफ्फिया को समान रूप में सलाम कहने की बात करता है। वह इस प्रकार से यह संकेत देना चाहता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विश्वास या विश्वास की सामर्थ में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं है।

सम्बोधन में तीसरा और अंतिम व्यक्ति जिसका नाम है वह हमारे साथ योद्धा अर्खिप्पुस का नाम है। कुलुस्से की कलीसिया का एक और सदस्य यह व्यक्ति फिलेमोन और अफ्फिया का संबंधी हो सकता है। पौलुस मसीही व्यक्ति के जीवन और सेवकाई के विवरण में सैनिक रूपक का इस्तेमाल करने में हिचका नहीं (इफिसियों 6:10-17)। साथी योद्धा कहना यह संकेत देने का ढंग था कि किसी ने बहादुरी से बलिदानपूर्वक और वफ़ादारी से सेवा की है।

तीसरा सम्बोधन एक समूह के नाम था और वह समूह घर की कलीसिया थी। पौलुस ने जो पौलुस और फिलेमोन के बीच निजी मामला लगता हो सकता है उसमें अफ्फिया और अर्खिप्पुस को नहीं लाया बल्कि उसने निजी पत्र में पूरी मण्डली को सम्बोधित किया।

आयत 3. हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से अनुग्रह और शांति तुम्हें मिलती रहे। पौलुस का अपने पत्र में सलाम कहने का विशेष ढंग था। अनुग्रह परमेश्वर का मुख्त वरदान है (इफिसियों 2:8)। जो उद्धार दिलाता है, और शांति मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ मसीही लोगों के नये संबंध को कहा गया है (रोमियों 5:1)।

यीशु मसीह के रूप में पद पर यहां पर प्रभु विशेष दिलचस्पी वाली बात है। कुलुस्सियों के नाम नजदीकी से जुड़े पत्र में पौलुस ने सेवक और दास के संबंध की बात की। उस अवसर पर उसने प्रभु के लिए यूनानी संज्ञा का इस्तेमाल किया जिसमें दोनों का अर्थ दास का स्वामी और प्रभु मसीह है-

हे सेवको, जो शरीर के अनुसार तुम्हारे स्वामी हैं, सब बातों में उन की आज्ञा का पालन करो, मनुष्यों को प्रसन्न करने वालों की नाई दिखाने के लिए नहीं, परन्तु मन की सीधाई और परमेश्वर के भय से। और जो कुछ तुम करते हो, तन मन से करो, यह समझ कर कि मनुष्यों के लिए नहीं परन्तु प्रभु के लिए करते हो। क्योंकि तुम जानते हो कि तुम्हें इसके बदले प्रभु से मीरास मिलेगी, तुम प्रभु मसीह की सेवा करते हो।

हे स्वामियों, अपने-अपने दासों के साथ न्याय और ठीक-ठीक व्यवहार करो, यह समझकर कि स्वर्ग में तुम्हारा भी एक स्वामी है (कुलुस्सियों 3:22-4:1)।

उसके दास की ओर से स्वामी से अपील करने का आरंभ करने की तैयारी करते हुए पौलुस के लिए उपयुक्त और शायद आवश्यक था कि वह यह याद दिलाते हुए आरंभ करे कि दास और स्वामी दोनों ही प्रभु यीशु मसीह के अधिकार में है।

पौलुस का थिस्सलुनीकियों के प्रति आभार

(1 थिस्स. 1:2-4)

अर्ल डी. एडवर्डस

हम अपनी प्रार्थनाओं में तुम्हें स्मरण करते और सदा तुम सब के विषय में परमेश्वर का धन्यवाद करते हैं, और अपने परमेश्वर और पिता के सामने तुम्हारे विश्वास के काम और प्रेम

का परिश्रम और हमारे प्रभु यीशु मसीह में आशा की धीरता को लगातार स्मरण करते है। हे भाइयों परमेश्वर के प्रिय लोगों, हम जानते हैं कि तुम चुने हुए हो।

आयत 2. पौलुस ने परमेश्वर का धन्यवाद किया, जैसे कि वह अक्सर अपनी पत्रियों का आरंभ करता है किसी ऐसे वाक्य के रूप में धन्यवाद करो, यह यूनानी शब्द इयुकरिस्टियो से है (देखें 2 थिस्सलुनीकियों 1:3; 1 कुरिन्थियों 1:4)। प्रत्यक्ष रूप में यह थिस्सलुनीकियों में बहुत अधिक था। वे पौलुस के उत्साह के कारण रहे थे (1:8-10)। पौलुस ने कहा कि वह उनको अपनी प्रार्थनाओं में स्मरण करता था। पौलुस की प्रार्थनाओं में विशेष मण्डलियों के साथ ही साथ व्यक्ति विशेष भी पाए जाते थे (2 तीमुथियुस 1:3)। इसके अतिरिक्त, इस बात पर ध्यान देना बड़ा ही आवश्यक है कि उसने सदा परमेश्वर का धन्यवाद किया। उसने धन्यवाद के साथ लगातार प्रार्थना की (5:17, 18)।

आयत 3. लगातार स्मरण कराते हैं और इसमें आयत 2 के विचार की निरंतरता दिखाई देती है। अपनी प्रार्थनाओं में परमेश्वर को धन्यवाद देने के अतिरिक्त उसने कहा कि वह और उसके सहकर्मी लगातार थिस्सलुनीकियों के प्रयासों को स्मरण रखते है। उसने बताया कि यह प्रार्थनाएं परमेश्वर पिता के सामने जाती है। अर्थात उनको परमेश्वर के सिंहासन के सामने प्रस्तुत किया था। हम बड़े आत्म-विश्वास के साथ उसके सिंहासन के पास जाते हैं क्योंकि वह हमारा पिता है (इब्रानियों 4:16)।

विशेष बातें जिनके लिए वह परमेश्वर का धन्यवाद कर रहे थे वे थिस्सलुनीकियों के कार्य के द्वारा उत्पन्न विश्वास, प्रेम से उत्प्रेरित परिश्रम और आशा के द्वारा उत्प्रेरित उनकी दृढ़ता थी।

विश्वास, आशा और प्रेम यह तीन मुख्य मसीही कृपाओं को लगातार एक साथ किसी दूसरे स्थान में वर्णन किया गया है (5:8; 1 कुरिन्थियों 13:13; कुलुस्सियों 1:3; 1 पतरस 1:21, 22)। उन पर दिए गए बल ने संकेत किया कि वे विशेष रूप से महत्वपूर्ण गुण थे इनके कारण से मसीही जीवन में जो उत्पन्न हुआ(प्रोत्साहन या उत्प्रेरण)। सच्चे विश्वास ने कार्यों को उत्पन्न किया (याकूब 2:14-17; इब्रानियों 11); प्रेम यूनानी शब्द अगापे से है, इसने परिश्रम या कड़े परिश्रम को उत्प्रेरित किया, आशा ने दृढ़ता (धीरज या दृढ़ता) का उत्प्रेरित किया, इसका अर्थ वे सताव और अन्य रूकावटें जिनका उन्होंने सामना किया होने के बावजूद भी बने रहे। अनन्त महिमा में (रोमियों 8:18-25; 15:4) आशा के कारण जो हमारे प्रभु यीशु मसीह में है सुनाने के कारण वे बने रहे।

एथलबर्ट स्काउफर ने अगापे की अपनी चर्चा में देखा कि यीशु ने, अपने जीवन और मृत्यु में एक नई वास्तविकता को उत्पन्न किया जो कि अगापे शब्द में वर्णित है। मौरिस यह कहते हुए सहमत हुआ।

यह नये नियम से आरंभ होता है। न केवल उनके पास यह नया शब्द था, परन्तु उनके पास एक नया विचार था, क्योंकि जैसा यूहन्ना ने कहा, हम किसी भी मानवीय कार्य से अगापे क्या है कभी नहीं जान सकते, यहां तक कि परमेश्वर के प्रति प्रेम सभी नहीं। यह मात्र परमेश्वर के महान प्रेम से ही क्रूस पर प्रायश्चित करने के द्वारा हम पर दर्शाया गया है (1 यूहन्ना 4:10)।

परमेश्वर का यह महान कार्य एक मानक है जो नया नियम में अगापे के अर्थ को दर्शाता है। वास्तविक अगापे को देखने के बाद हम इसे हमारे अगापे के परिरम में अनुसरण

करने का प्रयास करते है। ए.टी. रॉबर्टसन ने सही रूप से कहा कि अगापे श्रेष्ठ प्रकार का प्रेम है। आयत चार में ध्यान दें कि मसीही परमेश्वर के प्रिय (अगापाओ शब्द से क्रिया) लोग हैं।

आयत 4. हे भाइयो एडेलफोस यह एक प्रीतिकर शब्दावली है जिसका पौलुस ने इस पत्री में बार-बार प्रयोग किया (2:1; 3:2; 4:6; 4:10)। यह मात्र थिस्सलुनीकियों की पत्री में ही 25 बार प्रयोग किया गया है। सभी व्यक्तियों से परमेश्वर ने प्रेम किया एगापेमेनोई हुपो (टाऊ) थिया (देखें 3:16), परन्तु केवल मसीही लोगों ने ही परमेश्वर के प्रेम की पहल स्वीकार किया है। इसलिए, मसीही लोग विशेष भाव में, परमेश्वर के द्वारा प्रेम किए हुए हैं उसमें उनका मसीह के द्वारा उससे मेलमिलाप हो गया (2 कुरिन्थियों 5:19)। यहूदा 21 प्रकट करता है कि आज्ञापालन करते हैं वे परमेश्वर के विशेष रूप से प्रेम में हैं। परमेश्वर के साथ इस विशेष संबंध के कारण, मसीही लोग उनके द्वारा चुने हुए लोग हैं। पौलुस ने इस चुनाव का संकेत दिया जब उसने लिखा तुम चुने हुए हो (तुम्हारा चुनाव)।

मण्डली के लोग मुख्य रूप अन्य जाति के लोग थे, फिर भी पौलुस ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह अब वह परमेश्वर के चुने हुओं का एक भाग थे, जैसे यहूदी लोग पुराना नियम में परमेश्वर के चुने हुए लोग थे। परमेश्वर के द्वारा चुने हुओं के रूप में मुख्य रूप से हमारे लिए परमेश्वर के प्रेम और चिंता पर निर्भर रहते हैं। क्या उसने पहला कदम नहीं बढ़ाया नहीं तो हमारा मेल-मिलाप ही न होता (यशायाह 64:6), परन्तु कुछ शर्तें हैं चुने जाने के लिए जिनको पूरा करना आवश्य है।

दरअसल, 2 थिस्सलुनीकियों 2:13 इसे स्पष्ट करता है कि वह जो सत्य में विश्वास और आत्मा के द्वारा शुद्ध होने के द्वारा चुना गया है। वे जो पवित्र आत्मा के कार्य का लाभ नहीं उठाते और विश्वास नहीं करते (एक धारणा जिसमें आज्ञाकारिता पाई जाती है) वह उद्धार नहीं पाते। यह विश्वास या बिना किसी संदेह के भरोसा इसमें लगातार विश्वास करना (या आज्ञाकारिता) भी पाया जाता है, जैसा कि 2 पतरस 1:5-11 में देखा गया है, जहां पर यह स्पष्ट किया गया है कि यदि हमें अपने चुने जाने को निश्चित करना है तो हमें हमारे जीवनों में समझ और संयम को रखना है (आयत 10)। यहां तक कि इस पत्री में, यह प्रत्यक्ष है कि थिस्सलुनीके के विश्वासी सच्चाई से भटकने की संभावना से बाहर नहीं बचाए गए थे (3:5; 4:6; 5:6-9)। इस निष्कर्ष पर पहुंचना है कि परमेश्वर ने चुना है, सबसे पहले, कुछ लोग उद्धार के लिए (जिन्होंने विश्वास किया और आज्ञापालन किया), दूसरे, विनाश के लिए एक समूह (जिन्होंने अविश्वास किया और अवज्ञा की)। हम निश्चय करें किस समूह में होंगे।

सही समूह में होने के लिए हमें सुसमाचार की आज्ञापालन के द्वारा आरंभ करना है और बढ़ने के द्वारा परमेश्वर के आचरण में रहना है और विश्वास, समझ गुणों में जोड़ना है। इस विचार की तुलना कलुस्सियों 3:12-17 के साथ करें जो कि एक अच्छा विवरण है कैसे परमेश्वर के चुने हुओं को आचरण करना है या जीवन व्यतीत करना है। यह भी ध्यान दें कि पौलुस ने कहा वह जानता है कि परमेश्वर ने उन्हें चुना है। उनका उनके मनपरिवर्तन के विषय कोई संदेह नहीं था कि परमेश्वर ने उन्हें चुना है। प्रेरित की ओर से कथन सुनना कि वे परमेश्वर के द्वारा चुने हुए हैं नए मसीहियों के लिए यह आश्वस्त करने वाला कथन था।